तित्थयर

जैन भवन

चतुर्दश वर्ष : जुलाई १९९० : तृतीय अंक

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १४ : अंक ३

जुलाई १९९०

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सो एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

ऐतिहासिक शिल्पी चागद वम्मदेव ६७

णमोकार मंत्र और मनोविज्ञान ७०

क्या व्याख्या प्रज्ञप्ति का पन्द्रहवाँ शतक प्रक्षिप्त है ? ७८

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ८५ संकलन ९३

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ९५

महावीर, वैभारगिरि, राजगीर

ऐतिहासिक शिल्पी चागद वम्भदेव

श्री कुन्दनलाल जैन

श्रवण बेलगोल (मैसूर) की विन्ध्यगिरि पहाड़ी पर संसार की सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक अद्भुत कलाकृति भ० गोमटेश्वर (बाहुबली) की सत्तावन फीट ऊँची खड्गासन प्रतिमा विश्व के आठवें आश्चर्य (Eighth Wonder) जैसी है। इसको मैसूर के तत्कालीन गङ्गवंशीय नरेश राचमल्ल चतुर्थ के प्रधानामात्य चामुण्डराय ने अपनी मातुश्री के लिए पूजा-अर्चा हेतु बनवाई थी। इस प्रतिमा के निर्माण का सारा श्रेय श्री चामुण्डराय को तो जाता ही है पर इसके तक्षक शिल्पी चागद वम्भदेव को भी इतिहास अब तक नहीं भुला पाया है।

शिल्पी चागद ने इस प्रतिमा को जिस निष्ठा, श्रद्धा, विश्वास एवं तप, त्याग और साधना से बनाया था उसकी इतिहास में मिसाल नहीं है। इसी का परिणाम हुआ कि चागद के शिष्यों एवं वंशजों ने उनकी पुण्य स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए दक्षिण के मन्दिरों में उनकी अश्वारोही प्रतिमाएँ शिलास्तम्भों पर निर्मित कर जगह-जगह पर प्रतिष्ठापित की और कराईं। इस अश्वारोही प्रतिमा के एक हाथ में चाबुक और दूसरे हाथ में श्रीफल उत्कीर्ण रहता है तथा पैरों में खड़ाऊँ पहनाई जाती है। चाबुक अन्याय और अधर्म के विनाश का प्रतीक है तथा श्रीफल धर्म स्थापना का प्रतीक माना जाता है।

भ० गोमटेश्वर की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के बाद परकोटे से बाहर एक कलापूर्ण प्रस्तर स्तम्भ खड़ा किया गया था जिस पर शिल्पी चागद की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसीलिए इसे 'चागद वम्भदेव स्तम्भ' के नाम से पुकारा जाता है। इसकी विशेषता है कि यह अधर में खड़ा है और इसके नीचे से रुमाल निकाला जा सकता है। इस पर शक सं० ९५० (१०२८ ईस्वी) का एक छः श्लोकों वाला शिलालेख उकेरा गया है जिसकी प्रतिलिपि नीचे दी जा रही है। इसमें प्रधानामात्य चामुण्डराय की प्रशस्ति दी हुई है जिससे चामुण्डराय के बारे में विशेष ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त होती है। इसके नीचे के कुछ श्लोक बाद में हेग्गडे कण्न ने रितवा दिए थे और अपने श्लोक खुदवा दिए थे जिससे चामुण्डराय सम्बन्धी कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक तथ्य सदा के लिए समाप्त हो

गये। यह एक बड़ा भारी ऐतिहासिक घाटा है। हेर्गडे कण्न ने इतिहास के साथ बड़ा धोखा किया केवल आत्मख्याति के पीछे, जिसे आज की ही नहीं भावी पीढ़ी भी कदापि क्षमा नहीं करेगी।

चागद लोभी प्रकृति का धर्म भीरु कारीगर था, पर उसके हाथ में हुनर तथा कला अच्छी थी। प्रधानामात्य चामुण्डराय ने उसे अपनी मातुश्री की अभिलाषा से अवगत कराया और उससे मूर्ति-निर्माण का आग्रह किया। चागद ने अपने पारिश्रमिक के रूप में प्रधानामात्य से उतने सोने की माँग की जितना पत्थर वह प्रतिदिन छीला करेगा। मातृभक्त एवं गोमटेश्वर के पुजारी प्रधानामात्य ने कलाकार शिल्पी की माँग स्वीकार कर ली और मूर्ति-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया।

जब लोभी चागद पहले दिन का पारिश्रमिक स्वरूप सोना लेकर खुशी-खुशी घर पहुँचा और सोना अपनी मां को सौपने लगा तो दैव दुर्विपाक से वह सोना उसके हाथसे नहीं छूट रहा था। उसकी माँ यह सब देखकर विस्मित हो उठी। जब माँ ने अपने लोभी बेटे से सारी राम कहानी सुनी तो उसने अपने बेटे को उसकी अपनी कलामर्मज्ञता के दुरुपयोग के लिए बुरी तरह से कोसा एवं फटकारा और उसे सलाह दी कि वह सारा सोना प्रधानामात्य को वापिस दे आवे और केवल भक्ति भाव से ही निस्पृहतापूर्वक भ० गोमटेश्वर की मूर्ति-निर्माण का व्रत लेवे।

कलाकार चागद की भावना मातृ-उपदेश से एकदम बदल गई और वह तुरन्त ही मातुश्री की आज्ञा शिरोधार्य कर वापिस प्रधानामात्यके चरणों में जा गिरा और अपनी निर्लोभवृत्ति का परिचय देते हुए सारा सोना प्रधानामात्य को वापिस दे दिया और केवल भक्ति भाव से ही मूर्ति-निर्माण का वचन दिया उसी दिन से भक्त चागद ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया और साधनापूर्वक मूर्ति-निर्माण में तल्लीन हो गया। कई वर्षों की साधना एवं तपस्या के फलस्वरूप भक्त शिल्पी ऐसी सुन्दर कलापूर्ण कृति का निर्माण कर सका जो आज विश्व की अनूठी रचना है। मूर्तिकला के इतिहास में ऐसा बेजोड़ नमूना कहीं भी नहीं मिलता है। यद्यपि चागद शिल्पी आज नहीं है पर शिल्प जगत में उसकी साधना और तपस्या कला के रूप में इतिहास प्रसिद्ध हो गई है। उसके अनुयायी एवं भक्तगण उसे श्रद्धापूर्वक युगों-युगों तक सादर नमन करते रहेंगे।

चागद वम्भदेव स्तम्भ लेख का मूल पाठ
(शक संवत् ९५०)

ब्रह्मछत्रकुलोदयाचल शिरोभूषामणिर्भानुमान्,
ब्रह्मछत्रकुलाब्धि वर्द्धनयशोरोचिस्सुधादीधितिः ।
ब्रह्मछत्रकुलाकराचलभव श्रीहारवल्लिमणिः,
ब्रह्मछत्रकुलाग्निचण्डपवनश्चाबूण्डउराजोऽजनिः ॥१॥

कल्पान्त क्षुभिताब्धिभीषणबलं पातालमल्लानुजम्,
जेतुंवज्विलदेवमुद्यतभुजस्येन्द्र क्षितीन्द्राज्ञया ।
पत्युश्श्रीजगदेकवीरनृपतेर्जैत्रि द्विपस्याग्रतो,
धावद्दन्तिनि यत्रभग्नमहिमानीकं मृगानीकवत् ॥२॥

अस्मिन्दन्तिनिदन्तवज्रदलित द्विट्कुम्भिकुम्भोपले,
वीरोत्रंसपुरोनिषीदिनिरिपु व्यालांकुशे च त्वयि ।
स्यात्कोनाम न गोचरप्रतिनृपो मद्वाणकृष्णोरगः,
ग्रासस्येति नोलम्बराजसमरे यः श्लाघितः स्वाभिना ॥३॥

खातःक्षारपयोधिरस्तु परिधिस्चास्तु त्रिकूटरपुरी,
लंकास्तुप्रतिनायकोस्तु च सुरारातिस्तथापि क्षमें ।
तं जेतुं जगदेकवीरनृपतेस्त्वत्तेजसेत्ति क्षणान्,
निर्ध्यूढ़ंरणसिङ्गपार्थिवरणे येनोज्जितमृगर्ज्जितम् ॥४॥

वीरस्यास्यरणेषु भूरिषु वयम कण्ठग्रहोत्कण्ठया,
तप्तास्सम्प्रति लब्धनिवृ त्ति रसास्त्वत्खङ्गधाराम्भसा ।
कल्पान्तंरणरङ्गसिङ्ग विजयी जीवेतिनाकाङ्गना,
गीर्वाणीकृत राजगंधकरिणं यस्मैवितीर्णांशिषः ॥५॥

आक्रष्टु भुजविक्रमादभिलषन् गङ्गाधिराज्यश्रियम्,
येनादौचलदङ्कगङ्ग नृपतिर्ध्यांलाभिलाषीकृतः ।
कृत्वावीरकपालरत्नचषकेवीरद्विषश्शोषितम्,
पातुंकौतुकिनश्चकौणपगणाः पृष्नांभिलाषीकृता ॥६॥

चागद वम्भदेव मूल कन्नड़ भाषा का शब्द है जिसका संस्कृत रूपान्तर स्यागद ब्रह्मदेव होता है । —लेखक

णमोकार मंत्र और मनोविज्ञान

डॉ० नेमीचंद्र शास्त्री

णमोकार मंत्र का अर्थ

वैदिक धर्मानुयायियों में जो ख्याति और प्रचार गायत्री मन्त्र का है, बौद्धों में त्रिशरण मन्त्र का है, जैनों में वही ख्याति और प्रचार णमोकार मन्त्र का है। समस्त धार्मिक और सामाजिक कृत्यों के आरम्भ में इस महामन्त्र का उच्चारण किया जाता है। जैन-सम्प्रदाय का यह दैनिक जाप मन्त्र है। इस मन्त्र का प्रचार तीनों सम्प्रदायों—दिगम्बर, श्वेताम्बर और स्थानकवासियों में समान रूप से पाया जाता है। तीनों सम्प्रदाय के प्राचीनतम् साहित्य में भी इसका उल्लेख मिलता है। इस मन्त्र में पाँच पद, अट्ठावन मात्रा और पैंतीस अक्षर हैं। मन्त्र निम्न प्रकार है :

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व-साहूणं॥

स्वर और व्यंजनों का विश्लेषण करने पर प्रतीत होता है कि णमो अरिहंताणं, ६ व्यंजन; णमो सिद्धाणं, ५ व्यंजन; णमो आइरियाणं, ५ व्यंजन; णमो उवज्झायाणं, ६ व्यंजन; णमो लोए सव्वसाहूणं, ८ व्यंजन; इस प्रकार इस मन्त्र में कुल ६+५+५+६+८=३० व्यंजन हैं। इस मन्त्र में सभी वर्ण अजन्त हैं, यहाँ हलन्त एक भी वर्ण नहीं है, अतः ३५ अक्षरों में ३५ स्वर मानने चाहिए। पर वास्तविकता यह है कि ३५ अक्षरों के होने पर भी वहाँ स्वर ३४ हैं। इस प्रकार कुल मन्त्र में ३५ अक्षर होने पर भी ३४ ही स्वर रहते हैं। कुल स्वर और व्यंजनों की संख्या ३४+३०=६४ हैं। मूल वर्णों की संख्या भी ६४ ही है। प्राकृत भाषा के नियमानुसार अ, इ, उ और ए मूल स्वर तथा ज ञ ण त द ध य र ल व स और ह—ये मूल व्यंजन इस मन्त्र में निहित हैं। अतएव ६४ अनादि मूल वर्णों को लेकर समस्त श्रुतज्ञान के अक्षरों का प्रमाण निकाला जा सकता है।

णमोकार मन्त्र के जाप करने की विधि

णमोकार मन्त्र का जाप करने के लिए सर्वप्रथम आठ प्रकार की शुद्धियों का होना आवश्यक है। १. द्रव्यशुद्धि—पंचेन्द्रिय तथा मन को वश कर कषाय और परिग्रह का शक्ति के अनुसार त्याग कर कोमल और दयालुचित्त

हो जाप करना। यहाँ द्रव्यशुद्धि का अभिप्राय पात्र की अंतरंग शुद्धि से है। जाप करने वाले को यथाशक्ति अपने विकारों को हटाकर ही जाप करना चाहिए। अंतरंग से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, माया आदि विकारों को हटाना आवश्यक है। २. क्षेत्रशुद्धि—निराकुल स्थान, जहाँ हल्ला-गुल्ला न हो तथा डाँस-मच्छर आदि बाधक जन्तु न हों। चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने वाले उपद्रव एवं शीत-उष्ण की बाधा न हो, ऐसा एकान्त निर्जन स्थान जाप करने के लिए उत्तम है। घर के किसी एकान्त प्रदेश में जहाँ अन्य किसी प्रकार की बाधा न हो और पूर्ण शान्ति रह सके, उस स्थान पर भी जाप किया जा सकता है। ३. समय शुद्धि—प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या समय कम से कम ४५ मिनट तक लगातार इस महामन्त्र का जाप करना चाहिए। जाप करते समय निश्चिन्त रहना एवं निराकुल होना परम आवश्यक है। ४. आसनशुद्धि—काष्ठ, शिला, भूमि, चटाई या शीतलपट्टी पर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके पद्मासन, खड्गासन या अर्द्धपद्मासन होकर क्षेत्र तथा काल का प्रमाण करके मौनपूर्वक इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। ५. विनयशुद्धि—जिस आसन पर बैठकर जाप करना हो, उस आसन को सावधानीपूर्वक ईर्यापथ शुद्धि के साथ साफ करना चाहिए, तथा जाप करने के लिए नम्रतापूर्वक भीतर का अनुराग भी रहना आवश्यक है। जब तक जाप करने के लिए भीतर का उत्साह नहीं होगा, तब तक सच्चे मन से जाप नहीं किया जा सकता। ६. मनःशुद्धि—विचारों की गन्दगी का त्याग कर मन को एकाग्र करना, चंचल मन इधर-उधर न भटकने पाये इसकी चेष्टा करना, मन को पूर्णतया पवित्र बनाने का प्रयास करना ही इस शुद्धि में अभिप्रेत है। ७. वचन शुद्धि—धीरे-धीरे साम्यभाव पूर्वक इस मन्त्र का शुद्ध जाप करना अर्थात् उच्चारण करने में अशुद्धि न होने पाये तथा उच्चारण मन ही मन में होना चाहिए। C. कायशुद्धि—शौचादि शंकाओं से निवृत्त होकर यत्नाचारपूर्वक शरीर शुद्ध करके हलन-चलन क्रिया से रहित हो जाप करना चाहिए। जाप के समय शारीरिक शुद्धि का ध्यान रखना चाहिए।

इस महामन्त्र का जाप यदि खड़े होकर करना हो, तो तीन-तीन श्वासोच्छ्वास में एक बार पढ़ना चाहिए। एक सौ आठ बार के जाप में कुल ३२४ श्वासोच्छ्वास—साँस लेना चाहिए। इसके जाप करने की कमल जाप, हस्तांगुली जाप और माला जाप—तीन विधियाँ हैं।

मनोविज्ञान और णमोकार मन्त्र

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह विचारणीय प्रश्न है कि णमोकार मन्त्र का

मन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? आत्मिक शक्ति का विकास किस प्रकार होता है, जिससे इस मन्त्र को समस्त कार्यों में सिद्धि देने वाला कहा गया है। मनोविज्ञान मानता है कि मानव की दृश्य क्रियाएँ उनके चेतन मन में और अदृश्य क्रियाएँ अचेतन मन में होती हैं। मन की इन दोनों क्रियाओं को मनोवृत्ति कहा जाता है। साधारणतः मनोवृत्ति शब्द चेतन मन की क्रिया के बोधके लिये प्रयुक्त होता है। प्रत्येक मनोवृत्ति के तीन पहलू हैं—ज्ञानात्मक, वेदनात्मक और क्रियात्मक। ये तीनों पहलू एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते हैं। मनुष्य को जो कुछ ज्ञात होता है, उसके साथ-साथ वेदना और क्रियात्मक भाव की भी अनुभूति होती है। ज्ञानात्मक मनोवृत्ति के संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण, कल्पना और विचार—ये पाँच भेद हैं। संवेदनात्मक के संवेग, उमंग, स्थायीभाव और भावनाग्रन्थि—ये चार भेद एवं क्रियात्मक मनोवृत्ति के सहज क्रिया, मूलवृत्ति, आदत, इच्छित क्रिया और चरित्र—ये पाँच भेद किये गये हैं। णमोकार मन्त्र के स्मरण से ज्ञानात्मक मनोवृत्ति उत्तेजित होती है, जिससे उसके अभिन्नरूप में सम्बद्ध रहने वाली उमंग वेदनात्मक अनुभूति और चरित्र नामक क्रियात्मक अनुभूति को उत्तेजना मिलती है। अभिप्राय यह है कि मानव मस्तिष्क में ज्ञानवाही और क्रियावाही—दो प्रकार की नाड़ियाँ होती है। इन दोनों नाड़ियों का आपस में सम्बन्ध होता है, परन्तु इन दोनों के केन्द्र पृथक् हैं। ज्ञानवाही नाड़ियाँ और मस्तिष्क के ज्ञानकेन्द्र मानव के ज्ञान विकास में एवं क्रियावाही नाड़ियाँ और मानव मस्तिष्क के क्रियाकेन्द्र उसके चरित्र के विकास की वृद्धि के लिये कार्य करते हैं। क्रियाकेन्द्र और ज्ञानकेन्द्र का घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण णमोकार मन्त्र की आराधना, स्मरण और चिन्तन से ज्ञानकेन्द्र और क्रिया-केन्द्रों का समन्वय होने से मानव मन सुदृढ़ होता है और आत्मिक विकास की प्रेरणा मिलती है।

मनुष्य का चरित्र उसके स्थायी भावों का समुच्चय मात्र है। जिस मनुष्य के स्थायी भाव जिस प्रकार के होते हैं, उसका चरित्र भी उसी प्रकार का होता है। मनुष्य का परिमार्जित और आदर्श स्थायी भाव ही हृदय की अन्य प्रवृत्तियों का नियन्त्रण करता है। जिस मनुष्य के स्थायीभाव सुनियन्त्रित नहीं अथवा जिसके मन उच्चादर्शों के प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव नहीं है, उसका व्यक्तित्व सुगठित तथा चरित्र सुन्दर नहीं हो सकता। दृढ़ और सुन्दर चरित्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य के मन में उच्चादर्शों के

प्रति श्रद्धास्पद स्थायीभाव हों तथा उसके अन्य स्थायी भाव उसी स्थायीभाव के द्वारा नियन्त्रित हों। स्थायीभाव ही मानव के अनेक प्रकार के विचारों के जनक होते हैं। इन्हीं के द्वारा मानव की समस्त क्रियाओं का संचालन होता है। उच्च आदर्श जन्य स्थायीभाव और विवेक—इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी विवेक को छोड़कर स्थायी भावों के अनुसार ही जीवन-क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं, जैसे विवेक के मना करने पर भी श्रद्धावश धार्मिक प्राचीन कृत्यों में प्रवृत्ति का होना तथा किसी से झगड़ा हो जाने पर उसकी झूठी निन्दा सुनने की प्रवृत्ति होना। इन कृत्यों में विवेक साथ नहीं है, केवल स्थायीभाव ही कार्य कर रहा है। विवेक मानव की क्रियाओं को रोक या मोड़ सकता है, उसमें स्वयं क्रियाओं के संचालन की शक्ति नहीं है। अतएव आचरण को परिमार्जित और विकसित करने के लिए केवल विवेक प्राप्त करना ही आवश्यक नहीं है, बल्कि आवश्यक है उसके स्थायी भाव को योग्य और दृढ़ बनाना।

व्यक्ति के मन में जब तक किसी सुन्दर आदर्श के प्रति या किसी महान व्यक्ति के प्रति श्रद्धा और प्रेम के स्थायी भाव नहीं, तब तक दुराचार से हटकर सदाचार में उनकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। ज्ञान की मात्र जानकारी से दुराचार नहीं रोका जा सकता है, इसके लिए उच्च आदर्श के प्रति श्रद्धा भावना का होना अनिवार्य है। णमोकार मन्त्र ऐसा पवित्र उच्च आदर्श है, जिससे सुदृढ़ स्थायी भाव की उत्पत्ति होती है। अतः णमोकार मन्त्र का मन पर जब बार-बार प्रभाव पड़ेगा अर्थात् अधिक समय तक इस महामन्त्र की भावना जब मन में बनी रहेगी, तब स्थायी भावों में परिष्कार हो ही जायेगा और ये ही नियन्त्रित स्थायी भाव मानव के चरित्र के विकास में सहायक होंगे।

इस महामन्त्र के मनन, स्मरण, चिन्तन और ध्यान में अर्जित भावों से स्थायी रूप से स्थित कुछ संस्कारों जिनमें अधिकांश विषय-कषाय सम्बन्धी ही होते हैं—में परिवर्तन होता है। मंगलमय आत्माओं के स्मरण से मन पवित्र होता है और पुरातन प्रवृत्तियों में शोधन होता है, जिससे सदाचार व्यक्ति के जीवन में आता है। उच्च आदर्श से उत्पन्न स्थायी भाव के अभाव में ही व्यक्ति दुराचार की ओर प्रवृत्त होता है। अतएव मनोविज्ञान स्पष्ट रूप से कहता है कि मानसिक उद्वेग, वासना एवं मानसिक विकार उच्च आदर्श के प्रति श्रद्धा के अभाव में दूर नहीं किये जा सकते हैं। विकारों को अधीन करने की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि परिणाम-

नियम, और तत्परता-नियम के द्वारा उच्चादर्श को प्राप्त कर विवेक और आचरण को दृढ़ करने से ही मानसिक विकार और सहज पाशविक प्रवृत्तियाँ दूर की जा सकती हैं। णमोकार मन्त्र के परिणाम-नियम का अर्थ यह है कि इस मन्त्र की आराधना कर व्यक्ति जीवन में सन्तोष की भावना को जाग्रत करे तथा समस्त सुखों का केन्द्र इसी को समझे। अभ्यास-नियम का तात्पर्य है कि इस मन्त्र का मनन, चिन्तन और स्मरण निरन्तर करता जाये। यह सिद्धान्त है कि जिस योग्यता को अपने भीतर प्रकट करना हो, उस योग्यता का बार-बार चिन्तन, स्मरण किया जाये। प्रत्येक व्यक्ति का चरम लक्ष्य ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप शुद्ध आत्मशक्ति को प्राप्त करना है, यह शुद्ध अमूर्तिक रत्नत्रय स्वरूप सच्चिदानन्द आत्मा ही प्राप्त करने योग्य है, अतएव रत्नत्रयस्वरूप पंचपरमेष्ठी वाचक णमोकार महामन्त्र का अभ्यास करना परम आवश्यक है। इस मन्त्र के अभ्यास द्वारा शुद्ध आत्मस्वरूप में तत्परता के साथ प्रवृत्ति करना जीवन में तत्परता नियम में उतरना है। मनुष्य में अनुकरण की प्रधान प्रवृत्ति पायी जाती है, इसी प्रवृत्ति के कारण पंच-परमेष्ठी का आदर्श सामने रखकर उनके अनुकरण से व्यक्ति अपना विकास कर सकता है।

मनोविज्ञान मानता है कि मनुष्य में भोजन ढूँढना, भागना, लड़ना, उत्सुकता, रचना, संग्रह, विकर्षण, शरणागत होना, काम प्रवृत्ति, शिशुरक्षा, दूसरों की चाह, आत्म-प्रकाशन, विनीतता और हंसना—ये चौदह मूल प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं। इनका अस्तित्व संसार के सभी प्राणियों में पाया जाता है। पर मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में यह विशेषता है कि मनुष्य इनमें समुचित परिवर्तन कर लेता है। केवल मूल प्रवृत्तियों द्वारा संचालित जीवन असभ्य और पाशविक कहलायेगा। अतः मूल प्रवृत्तियों में दमन, विलयन, मार्गान्तरीकरण और शोधन—ये चार परिवर्तन होते रहते हैं। प्रत्येक मूल प्रवृत्ति का बल उसके बराबर प्रकाशित होने से बढ़ता है। यदि किसी मूल प्रवृत्ति के प्रकाशन पर कोई नियन्त्रण नहीं रखा जाता है, तो वह मनुष्य के लिये लाभकारी न बनकर हानिप्रद हो जाती है। अतः दमन की क्रिया होनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यों कहा जाता है कि संग्रह की प्रवृत्ति यदि संयमित रूप में रहे, तो उससे मनुष्य के जीवन की रक्षा होती है। किन्तु जब यह अधिक बढ़ जाती है, तो कृपणता और चोरी का रूप धारण कर लेती है। इसी प्रकार द्वन्द्वता या युद्ध की प्रवृत्ति प्राण-रक्षा के लिए उपयोगी है, किन्तु

जब यह अधिक बढ़ जाती है तो यह मनुष्य की रक्षा न कर उसके विनाश का कारण बन जाती है। इसी प्रकार अन्य मूल प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। अतएव जीवन को उपयोगी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य समय-समय पर अपनी प्रवृत्तियों का दमन करे और इन्हें अपने नियन्त्रण में रखे। व्यक्तित्व के विकास के लिये मूल प्रवृत्तियों का दमन उतना ही आवश्यक है, जितना उनका प्रकाशन। मूल प्रवृत्तियों का दमन विचार या विवेक द्वारा होता है। किसी बाह्य सत्ता द्वारा किया गया दमन मानव जीवन के लिए हानिकारक होता है। अतः बचपन से ही णमोकार मन्त्र के आदर्श द्वारा मानव की मूल प्रवृत्तियों का दमन सरल और स्वाभाविक है। इस मन्त्र का आदर्श हृदय में श्रद्धा और दृढ़ विश्वास को उत्पन्न करता है, जिससे मूल प्रवृत्तियों का दमन करने में बड़ी सहायता मिलती है। णमोकार मन्त्र के उच्चारण, स्मरण, चिन्तन, मनन और ध्यान द्वारा मन पर इस प्रकार के संस्कार पड़ते हैं, जिससे जीवन में श्रद्धा और विवेक का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अतः मनुष्य का जीवन श्रद्धा और सद्विचारों पर ही अवलम्बित है, वह श्रद्धा और विवेक को छोड़कर मनुष्य की तरह जीवित नहीं रह सकता, अतः जीवन की मूल प्रवृत्तियों का दमन या नियंत्रण करने के लिए महामंगल वाक्य णमोकार मन्त्र का स्मरण परम आवश्यक है। इस प्रकार के धार्मिक वाक्यों के चिन्तन से मूल प्रवृत्तियाँ नियन्त्रित हो जाती हैं तथा जन्मजात स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। नियन्त्रण की यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे आती है। ज्ञानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र ने बतलाया है कि महामंगल वाक्यों की विद्युत शक्ति आत्मा में इस प्रकार झटका देती है, जिससे आहार, भय, मैथुन और परिग्रहजन्य संज्ञाएँ सहज में परिष्कृत हो जाती हैं। जीवन के धरातल को उन्नत बनाने के लिए इस प्रकार मंगल वाक्यों को जीवन में उतारना परम आवश्यक है। अतएव जीवन की मूल प्रवृत्तियों के परिष्कार के लिए दमन क्रिया को प्रयोग में लाना आवश्यक है।

मूल प्रवृत्तियों के परिवर्तन का दूसरा उपाय विलयन है। यह दो प्रकार से हो सकता है—निरोध द्वारा और विरोध द्वारा। निरोध का तात्पर्य है कि प्रवृत्तियों को उत्तेजित होने का ही अवसर न देना। इससे मूल प्रवृत्तियाँ कुछ समय में नष्ट हो जाती हैं। विलियम जेम्स का कथन है कि यदि किसी प्रवृत्ति को अधिक काल तक प्रकाशित होने का अवसर न मिले तो वह नष्ट हो जाती है। अतः धार्मिक आस्था द्वारा व्यक्ति अपनी विकार प्रवृत्तियों को अवरुद्ध कर उन्हें नष्ट कर सकता है। दूसरा उपाय विरोध द्वारा प्रवृत्तियों के

विलयन के लिए कहा गया है, उसका अर्थ है कि जिस समय एक प्रवृत्ति कार्य कर रही हो उसी समय उसके विवरीत दूसरी प्रवृत्ति को उत्तेजित होने देना। ऐसा करने से दो पारस्परिक विरोधी प्रवृत्तियों के एक साथ उभड़ने से दोनों का बल घट जाता है। इस तरह दोनों के प्रकाशन की रीति में अन्तर हो जाता है अथवा दोनों शान्त हो जाती हैं। जैसे द्वन्द्व प्रवृत्ति के उभरने पर यदि सहानुभूति की प्रवृत्ति उभार दी जाये तो उक्त प्रवृत्ति का विलयन सरलता से हो जाता है। णमोकार मन्त्र का स्मरण इस दिशा में भी सहायक सिद्ध होता है। इस शुभ प्रवृत्ति के उत्पन्न होने से अन्य प्रवृत्तियाँ सहज में विलीन की जा सकती हैं।

मूल प्रवृत्ति के परिवर्तन का तीसरा उपाय मार्गान्तरीकरण है। यह उपाय दमन और विलयन के उपाय से श्रेष्ठ हैं। मूल प्रवृत्ति के दमन से मानसिक शक्ति संचित होती है। जब तक इस संचित शक्ति का उपयोग नहीं किया जाये, तब तक यह हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। णमोकार मन्त्र का स्मरण इस प्रकार का अमोघ अस्त्र है, जिसके द्वारा बचपन से ही व्यक्ति अपनी मूल प्रवृत्तियों का मार्गान्तरीकरण कर सकता है। चिन्तन करने की प्रवृत्ति मनुष्य में पायी जाती है। यदि मनुष्य इस चिन्तन की प्रवृत्ति में विकारी भावनाओं को स्थान नहीं दे और इस प्रकार के मंगल वाक्यों का ही चिन्तन करे, तो चिन्तन प्रवृत्ति का यह सुन्दर मार्गान्तरीकरण है। यह सत्य है कि मनुष्य का मस्तिष्क निरर्थक नहीं रह सकता है, उसमें किसी न किसी प्रकार के विचार अवश्य आवेंगे। अतः चरित्र भ्रष्ट करने वाले विचारों के स्थान पर चरित्र वर्धक विचारों को स्थान दिया जाये, तो मस्तिष्क की क्रिया भी चलती रहेगी तथा शुभ प्रभाव भी पड़ता जायेगा।

ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य ने बतलाया है कि समस्त कल्पनाओं को दूर करके अपने चैतन्य और आनन्दमय स्वरूप में लीन होना, निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति का स्थान है। जो इस विचार में लीन रहता है कि मैं नित्य आनन्दमय हूँ, शुद्ध हूँ, चैतन्य स्वरूप हूँ, सनातन हूँ, परमज्योति ज्ञान प्रकाश रूप हूँ, अद्वितीय हूँ, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हूँ, वह व्यक्ति व्यर्थ के विचारों से अपनी रक्षा करता है, पवित्र विचार या ध्यान में अपने को लीन रखता है।

मूल प्रवृत्तियों के परिवर्तन का चौथा उपाय शोधन है। जो प्रवृत्ति अपने अपरिवर्तित रूप में निन्दनीय कर्मों में प्रकाशित होती है, वह शोधित रूप में

प्रकाशित होने पर श्लाघनीय हो जाती है। वास्तव में मूलवृत्ति का शोधन उसका एक प्रकार से मार्गान्तरीकरण है। किसी मन्त्र या मंगलवाक्य का चिन्तन आर्त्त और रौद्र ध्यान से हटाकर धर्मध्यान में स्थित करता है। अतः धर्मध्यान के प्रधान कारण णमोकार मन्त्र के स्मरण और चिन्तन की परम आवश्यकता है।

उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक विवेचन का अभिप्राय यह है कि णमोकार मन्त्र के द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने मन को प्रभावित कर सकता है। यह मन्त्र मनुष्य के चेतन, अवचेतन और अचेतन—तीनों प्रकार के मनों को प्रभावित कर अचेतन और अवचेतन मन पर सुन्दर स्थायी भाव का ऐसा संस्कार डालता है, जिससे मूल प्रवृत्तियों का परिष्कार हो जाता है। अचेतन मन में वासनाओं को अर्जित होने का अवसर नहीं मिल पाता। इस मन्त्र की आराधना में ऐसी विद्युत शक्ति है जिससे इसके स्मरण से व्यक्ति का अन्तर्द्वन्द्व शान्त हो जाता है, नैतिक भावनाओं का उदय होता है, जिससे अनैतिक वासनाओं का दमन होकर नैतिक संस्कार उत्पन्न होते हैं। आभ्यन्तर में उत्पन्न विद्युत बाहर और भीतर में इतना प्रकाश उत्पन्न करती है जिससे वासनात्मक संस्कार भस्म हो जाते हैं और ज्ञान का प्रकाश व्याप्त हो जाता है। इस मन्त्र के निरन्तर उच्चारण, स्मरण और चिन्तन से आत्मा को एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे आज की भाषा में विद्युत कह सकते हैं। इस शक्ति द्वारा आत्मा का शोधन कार्य तो किया ही जाता है, साथ ही इससे अन्य आश्चर्यजनक कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं।

[मूल लेख से संक्षेपित]

क्या व्याख्या प्रज्ञप्ति का पन्द्रहवाँ शतक प्रक्षिप्त है ?

डा० मोहनलाल मेहता

व्याख्या प्रज्ञप्ति अपरनाम भगवती सूत्र का पन्द्रहवाँ शतक गोशालक और महावीर के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। इस शतक को अक्षरशः पढ़ने पर ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि यह प्रकरण इस रूप में आगम में शोभा नहीं देता। मुझे तो इसमें भी सन्देह है कि यह शतक भगवान् महावीर की वीतराग वाणी से सम्बद्ध है। इसमें जिस अशोभनीय ढंग से महावीर व गोशालक के पारस्परिक कलह का वर्णन किया गया है तथा जिस प्रकार की असंयत भाषा का प्रयोग हुआ है, वैसा अन्य किसी भी आगम-ग्रन्थ में दृष्टि-गोचर नहीं होता। इस शतक में एक सबसे बड़ा दोष यह है कि शतककार ने भगवान् महावीर जैसी महान् विभूति पर चिकित्सा के नाम पर मांसाहार का कलंक लगाया है। इस प्रकार का महावीर-चरित अन्य किसी भी आगम में वर्णित नहीं है। मांसाहारपरक शब्दों का शाकाहारपरक अर्थ करके इस दोष को दूर करने का प्रयत्न किया तो जाता है, किन्तु इससे चिन्तक को सन्तोषप्रद समाधान प्राप्त नहीं होता। जिन शब्दों का प्रयोग इस शतक में किया गया है, जिनका कि शाकाहारपरक अर्थ किया जाता है, उन शब्दों का प्रयोग आगमिक साहित्य में अन्यत्र जहाँ-कहीं हुआ है, साधारण प्रचलित अर्थ में ही हुआ है अर्थात् उनका सुझाव मांसाहारपरक अर्थ की ओर ही है। टीकाकारों ने दोनों प्रकार के अर्थ की ओर संकेत किया है। वस्तुतः प्रस्तुत शतक ही अनेक विसंगतियों एवं दोषों से परिपूर्ण है। यह पूरा अथवा अधिकांश कृत्रिम मालूम पड़ता है। गोशालक की तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्धि तथा उनका नियतिवाद ये दोनों बातें तो बौद्ध साहित्य से भी प्रकट होती हैं, किन्तु जिस ढंग के इस शतक में गोशालक का चरित्र-चित्रण हुआ है, वह कुछ विचित्र-सा मालूम पड़ता है। आगम और उसमें भी अंगप्रविष्ट के अन्तर्गत इस प्रकार का वर्णन और वह भी कहीं-कहीं साधारण साधु को भी शोभा न दे वैसी भाषा में, उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, चाहे वह तथ्य पर ही आधारित क्यों न हो।

गोशालक सम्बन्धी प्रस्तुत शतक का प्रारम्भ श्रावस्ती में रहने वाली आजीविक मत अर्थात् गोशालक के मत-नियतिवाद की उपासिका हाला-हला नामक कुम्हारिन से होता है। सूत्रकार कहते हैं कि वह समृद्धिशालिनी

तथा प्रभाव सम्पन्न थी एवं किसी से भी पराभूत नहीं हो सकती थीं। इस उल्लेख से ऐसा प्रकट होता है कि भगवान् महावीर भी उसे नियतिवाद की अयथार्थता एवं पुरुषार्थवाद या कर्मवाद की यथार्थता समझाने में सफलता प्राप्त न कर सके अथवा समझाने का प्रयत्न ही न कर सके। उपासकदशांग सूत्र (सप्तम अध्ययन) में सद्दालपुत्र नामक एक कुम्हार श्रावक का वर्णन है जो गोशालक का अनुयायी था अर्थात् नियतिवादी था। बाद में भगवान् महावीर ने उसे युक्तिपूर्वक अपना अर्थात् पुरुषार्थवाद का अनुयायी बना लिया था। आजीविक मतानुयायियों से सम्बन्धित इन दो उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि गोशालक के अधिकांश अनुयायी कुम्भकार थे। जब भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र को युक्तिपूर्वक अपना अनुयायी बना लिया, तो क्या वे हालाहला को अपनी युक्तियों से प्रभावित नहीं कर सकते थे? हालाहला उसके सामने अपराभूत कैसे हो सकती थी? पराभूत हो जाने पर भी अपना कदाग्रह न छोड़ना अलग बात है, किन्तु महावीर जैसे महान व्यक्ति से भी पराभूत न होना दूसरी बात है।

आजीविक-संघाधिपति मंखलिपुत्र गोशालक का इतिवृत्त सुनाते हुए भगवान् महावीर अपने प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम को बताते हैं कि कोल्लाक सन्निवेश में जनता द्वारा विजय गाथापति के यहाँ हुई पांच दिव्य का समाचार सुनकर गोशालक के मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर को जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम प्राप्त है, वैसी ऋद्धि आदि अन्य श्रमण-ब्राह्मण को प्राप्त नहीं है। अतः मेरे धर्माचार्य व धर्मोपदेशक यही होने चाहिए। यह सोचकर वह खोजता-खोजता कोल्लाक सन्निवेश के बाहर मनोज्ञ भूमि में मेरे (महावीर के) पास आया और तीन बार प्रदक्षिणापूर्वक वन्दन-नमस्कार कर निवेदन करने लगा—हे भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका शिष्य हूँ। मैंने (महावीर ने) गोशालक की यह बात स्वीकार कर ली।

उपर्युक्त कथन में छद्मस्थ (सराग) महावीर के विषय में उल्लिखित दो बातें विचारणीय हैं। १. महावीर को धर्मोपदेशक कहा गया है, २. महावीर ने गोशालक को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया था। तीर्थंकर महावीर ने केवली (वीतराग) होने के बाद ही धर्मोपदेश का कार्य प्रारम्भ किया था। इसके पूर्व उनके साथ धर्मोपदेशक विशेषण लगाना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। साधनावस्था में तीर्थंकर तपःकर्म में लीन रहता है, उपदेश देने का काम नहीं करता। गोशालक ने धर्मोपदेश से प्रभावित होकर नहीं, अपितु पंच दिव्यादि

से आकर्षित होकर महावीर का शिष्यत्व अंगीकार करना चाहा। पहली बार तो महावीर ने गोशालक की बात पर ध्यान न दिया, किन्तु दूसरी बार वे उसे शिष्य के रूप में अपने साथ रखने के लिए तैयार हो गये तथा उसके साथ छः वर्ष तक लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करते हुए विचरते रहे। महावीर ने साधनाकाल में गोशालक को अपने साथ रहने की (और वह भी शिष्य के रूप में) अनुमति क्यों दी? क्या ऐसा करना तीर्थंकर की सरागावस्था में विहित है? तीर्थंकर वीतराग होने के बाद ही शिष्य बनाता है तथा उनके साथ विचरता है। सरागावस्था में वह अकेला ही रहता एवं विचरता है। उसका यही आचार है। इस नियम का अपवाद किसी अन्य आगम में दृष्टिगोचर नहीं होता। हाँ, आवश्यकचूर्णि आदि व्याख्या-ग्रन्थों में व्याख्याप्रज्ञप्ति के प्रस्तुत शतक का अनुगमन करके गोशालक का चरित्र अवश्य ही विचित्र ढंग से चित्रित किया गया है।

एकबार महावीर गोशालक के साथ सिद्धार्थ ग्राम की ओर जा रहे थे। मार्ग में पत्र-पुष्पयुक्त एक तिल के पौधे को देखकर गोशालक ने महावीर से पूछा—भगवन्, यह तिल का पौधा फलेगा या नहीं? ये सात तिलपुष्प के जीव मरकर कहाँ उत्पन्न होंगे? महावीर ने कहा—गोशालक! यह तिल का पौधा फलेगा और ये सात तिलपुष्प के जीव मरकर इसी तिल के पौधे की एक फली में सात तिलों के रूप में उत्पन्न होंगे। गोशालक को महावीर की बात पर विश्वास नहीं हुआ। महावीर को झूठा सिद्ध करने की भावना से गोशालक ने इस तिल के पौधे को उखाड़कर एक ओर फेंक दिया। बाद में वर्षा होने के कारण उस तिल का पौधा मिट्टी में जम गया तथा बद्धमूल हो गया। वे सात तिलपुष्प भी मरकर उसी तिल के पौधे की एक फली में तिलरूप में उत्पन्न हुए।

प्रस्तुत शतक के उपर्युक्त वर्णन में एक बात विचारणीय है। क्या महावीर छद्मस्थावस्था में जीव की भविष्यत्कालीन उत्पत्ति का ज्ञान कर सकते थे? जीव अरूपी द्रव्य है। असर्वज्ञ अपने अवधिज्ञान के द्वारा रूपी पदार्थों के विषय में तो किसी प्रकार की भविष्यवाणी कर सकता है, किन्तु अरूपी पदार्थों के विषय में इस प्रकार का कथन जैन ज्ञानवाद की मान्यता से विपरीत है। कर्म-युक्त होने पर भी जीव अवधिज्ञान का साक्षात् विषय नहीं हो सकता। अन्यथा केवलज्ञान और अवधिज्ञान में अन्तर ही क्या रहेगा? अवधिज्ञानी तिल के पौधे के बारे में भविष्यवाणी कर सकता है, क्योंकि पौधा रूपी है; किन्तु तिल के जीव के बारे में वैसा नहीं कर सकता, क्योंकि जीव अरूपी है।

गोशालक महावीर से पृथक् होकर अपने को जिन, केवली, सर्वज्ञ कहने लगा। महावीर, जो कि वीतराग एवं सर्वज्ञ हो चुके थे, गोशालक को जिन, केवली, सर्वज्ञ मानने के लिए तैयार न थे। वे कहते थे कि गोशालक अपने को जिन नहीं होते हुए भी जिन, केवली सर्वज्ञ घोषित कर रहा है। इसके विपरीत गोशालक महावीर को छद्मस्थ (असर्वज्ञ) ही समझता था। वह उन्हें सर्वज्ञ मानने के लिए तैयार न था। लोग कहते थे कि दो जिन परस्पर आक्षेप-प्रक्षेप कर रहे हैं। एक कहता है कि मैं सर्वज्ञ हूँ और दूसरा कहता है कि मैं सर्वज्ञ हूँ। इसमें कौन सच्चा और कौन झूठा है? उनमें जो मुख्य व प्रतिष्ठित व्यक्ति थे, वे कहते—श्रमण भगवान् महावीर सत्यवादी हैं और मंखलिपुत्र गोशालक मिथ्यावादी हैं।

इस वर्णन से मालूम होता है कि सर्वज्ञ की उपस्थिति में भी लोग सर्वज्ञता के विषय में सर्वसम्मत निर्णय नहीं कर पाते थे। कोई किसी एक को सर्वज्ञ मानता था, तो कोई किसी अन्य को। वस्तुतः सर्वज्ञ कौन है, इसका निर्णय उन सर्वज्ञों के सामने भी नहीं हो पाता था। जब तथाकथित सर्वज्ञ ही आपस में लड़ते-झगड़ते हों तथा एक-दूसरे पर आक्षेप-प्रक्षेप करते हों, तो असर्वज्ञ लोग सर्वज्ञता की हँसी नहीं उड़ाएँगे तो क्या करेंगे? सर्वज्ञ होकर लोगों को अपने सर्वज्ञत्व की प्रतीति न करा सके वह सर्वज्ञ कैसा? किसी की कोई भी मान्यता क्यों न हो, यदि कोई वास्तव में सर्वज्ञ है तो सबको उसे सर्वज्ञ मानना ही पड़ेगा। सर्वज्ञ के ज्ञान के प्रभाव के सामने किसी का आग्रह टिक ही नहीं सकता। सर्वज्ञ को यह कहने की या घोषणा करने की आवश्यकता ही नहीं रहती कि मैं सर्वज्ञ-जिन-केवली हूँ और अमुक व्यक्ति सर्वज्ञ-जिन-केवली नहीं है : जनसमूह स्वयं समझ लेगा कि कौन सर्वज्ञ है और कौन असर्वज्ञ। प्रस्तुत शतक में महावीर और गोशालक के बीच हुए वाद-विवाद व लड़ाई-झगड़े का जिस विचित्र ढंग से वर्णन किया गया है, उसे देखते हुए तो यही कहना पड़ेगा कि न तो महावीर ही जिन अथवा वीतराग एवं केवली अर्थात् सर्वज्ञ थे और न गोशालक ही जिन एवं केवली था। दोनों अपने-अपने संघ में प्रभावशाली एवं पूज्य थे। दोनों एक-दूसरे को अपमानित करने एवं नीचा दिखाने के प्रयत्न में थे।

गोशालक ने तो जो कुछ किया सो किया ही, महावीर ने भी गोशालक पर क्रोध करने में कसर न रखी। महावीर खुले आम यह घोषित करते थे कि गोशालक जिन नहीं बल्कि जिनप्रलापी है। गोशालक जब अनेकों मनुष्यों से

यह बात सुनता तो वह अत्यन्त क्रोधित होता—उसके क्रोध का पार न रहता। एक दिन महावीर के शिष्य आनन्द को चेतावनी देते हुए गोशालक ने कहा कि यदि आज वे मेरे सम्बन्धमें कुछ भी कहेंगे तो मैं अपने तप-तेज द्वारा उन्हें भस्म कर दूंगा। महावीर भी मानते थे कि गोशालक अपने तप-तेज से किसी को भी भस्म कर सकता था, किन्तु अरिहंत-भगवन्तों को नहीं जला सकता था। हाँ, उनमें परिताप अवश्य उत्पन्न कर सकता था। इसीलिए महावीर ने अपने शिष्यों को गोशालक के साथ चर्चा-वार्त्ता करने की मनाही कर रखी थी। चूँकि वह महावीर को जलाकर भस्म नहीं कर सकता था अतः वे उसे खरी-खोटी सुनाते थे।

एकबार गोशालक को अपने व्यक्तित्व को छिपाने की चेष्टा करते हुए देखकर वीतराग महावीर ने जरा फटकारते हुए कहा कि जिस प्रकार कोई चोर ग्रामवासियों से पराजित होकर भागता हुआ किसी गुफा, दुर्ग, खाई अथवा अन्य विषम स्थान के न मिलने पर शन, कपास, तृण आदि के अग्रभाग से अपने को ढकने की चेष्टा करता है तथा ढका हुआ नहीं होने पर भी अपने को ढका हुआ समझता है—छिपा हुआ नहीं होने पर भी अपने को छिपा हुआ समझता है, उसी प्रकार तू भी अपने को छिपाने की चेष्टा कर रहा है, अपने को छिपा हुआ समझ रहा है, अन्य कोई होते हुए भी अपने को अन्य बता रहा है। यह सुनकर गोशालक अत्यन्त क्रोधित हुआ और महावीर को बुरी तरह गालियाँ देने लगा। उसने कहा कि तू आज ही नष्ट, विनष्ट व भ्रष्ट हो जाएगा। कदाचित् आज जीवित नहीं रहेगा। गोशालक का यह अभद्र व्यवहार देखकर महावीर के दो शिष्यों ने उसे समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु गोशालक क्रोधाभिभूत हो अपने तपस्तेज से दोनों को जलाकर भष्म कर दिया। महावीर देखते रह गये।

आगे शतककार ने बताया है कि सर्वज्ञ वीतराग भगवान् महावीर भी अपने ज्ञान एवं व्यवहार से गोशालक को तनिक भी प्रभावित न कर सके। जैसे महावीर के शिष्यों ने गोशालक को समझाया वैसे ही महावीर ने भी उसे समझाया। गोशालक महावीर पर भी उसी प्रकार क्रुद्ध हुआ तथा उन पर तेजोलेश्या का प्रहार कर कहने लगा कि तू मेरी इस तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्त जन्य दाह से पीड़ित हो छः मास पश्चात् छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु को प्राप्त होगा। महावीर ने गोशालक को उसी भाषा में प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि तू ही अपनी तपोजन्य तपस्या से पराभूत होकर

पित्तज्वर से पीड़ित हो सात रात्रि पश्चात् छद्मस्थ अवस्था में ही काल-कवलित होगा। मैं तो अभी सोलह वर्ष तक जिन के रूप में विचरण करता रहूँगा। गोशालक व महावीर के बीच हुए इस झगड़े की चर्चा चारों ओर होने लगी। लोग कहते थे—श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य में दो जिन परस्पर झगड़ रहे हैं इनमें से एक कहता है कि तू पहले मरेगा और दूसरा कहता है कि तू पहले मरेगा। उन दोनों की असंयत एवं आक्षेपपूर्ण भाषा से वे लोग सच-झूठ का निश्चय नहीं कर पाते थे।

जब गोशालक की हतप्रभता एवं दुर्बलता का लाभ उठाते हुए अरिहंत महावीर ने अपने निर्ग्रन्थ श्रमणों को बुलाकर गोशालक के विरुद्ध उत्तेजित करते हुए कहा—जिस प्रकार तृण, काष्ठ, पत्र आदि का ढेर अग्नि से जल जाने पर हतप्रभ हो जाता है, उसी प्रकार गोशालक भी मेरे बध के लिए तेजोलेश्या निकाल कर हतप्रभ हो गया है। अब तुम लोग उसके सामने जाकर उसके मत के प्रतिकूल यथेच्छ वचन कहो, उसे विविध प्रकार से निरुत्तर करो। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने विविध प्रकार के प्रश्नोत्तरों द्वारा गोशालक को निरुत्तर कर दिया। इससे गोशालक अत्यन्त क्रोधित हुआ किन्तु वह निर्ग्रन्थ श्रमणों का कुछ भी न बिगाड़ सका।

सर्वज्ञ जिनेन्द्र महावीर की सावद्य भविष्यवाणी के अनुसार सातवीं रात्रि व्यतीत होने पर गोशालक मृत्यु को प्राप्त हुआ। महावीर को भी अत्यन्त पीड़ाकारी पित्तज्वर का दाह उत्पन्न हुआ तथा खून की दस्तें लगने लगीं। उनकी यह स्थिति देखकर लोग आपस में चर्चा करने लगे—अब महावीर गोशालक के कथनानुसार छः मास पश्चात छद्मस्थावस्था में ही मृत्यु प्राप्त करेंगे। महावीर के शिष्य सिंह अनगार ने भी यह चर्चा सुनी। इससे इन्हें बहुत दुःख हुआ और वे रुदन करने लगे। शतककारकृत इस प्रकार के वर्णन से मालूम होता है कि महावीर की वीतरागता, सर्वज्ञता एवं असाधारणता से सामान्य जनसमूह तो अपरिचित था ही, उसके कुछ शिष्य भी इन विशिष्ट गुणों एवं शक्तियों से परिचित न थे। अथवा यों कह सकते हैं कि महावीर की इन असाधारण विशेषताओं के प्रति इन लोगों को पूरा विश्वास नहीं था। अन्यथा वे लोग इस प्रकार अविश्वासपूर्ण आचरण क्यों करते?

सर्वज्ञ महावीर ने सिंह अनगार की वेदना जान ली। उन्होंने निर्ग्रन्थों को उन्हें बुलाने के लिए भेजा। सिंह अनगार के आने पर महावीर ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा—मैं अभी नहीं मरूँगा बल्कि सोलह वर्ष तक और

जिन के रूप में विचरण करूँगा। अतः तू मेढ़ियग्राम में रेवती गृहपत्नी के यहाँ जा। उसने मेरे लिए दो कपोत शरीर उपस्कृत कर तैयार कर रखे हैं, किन्तु उनका मुझे प्रयोजन नहीं है। उसके यहाँ वासी (कल का) मार्जारकृत कुक्कुट-माँस है वह ले आ। उसका मुझे प्रयोजन है। सिंह अनगार रेवती गृहपत्नी के यहाँ गये एवं महावीर की आज्ञानुसार कुक्कुट-माँस लाये। महावीर ने उसका सेवन किया जिससे उनका पीड़ाकारी रोग शान्त हुआ।

इस शतक में वर्णित भगवान महावीर के कुक्कुटमाँस-सेवन से सम्बन्धित प्रस्तुत प्रसंग पर विचार करने की आवश्यकता है। विवाद का विषय केवल दो-चार शब्दों के अर्थ तक ही सीमित नहीं है। यह पूरा का पूरा शतक ही विवादास्पद है। उपर्युक्त कुछ विसंगतियों एवं विचित्रिता के अतिरिक्त इस शतक में और भी ऐसी अनेक त्रुटियाँ हैं जो शतककार की प्रामाणिकता में सन्देह उत्पन्न करती है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्तुत शतक में वर्णित महावीर-गोशालक का अशोभनीय वार्तालाप काल्पनिक है। उसे किसी तरह सच मान भी लिया जाए तो भी गोशालक की तेजोलेश्या से महावीर जैसे अतिशय सम्पन्न पुरुष को अत्यन्त पीड़ाकारी पित्तज्वर का दाह उत्पन्न होना एवं खून की दस्तें लगना अजीब-सा मालूम पड़ता है। यह भी किसी तरह सच मान लिया जाय तो भी महावीर द्वारा अपने रोग की चिकित्सा करना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता; क्योंकि रोगातंक हो या न हो, महावीर ने चिकित्सा की कामना कभी नहीं की। यदि इसे किसी प्रकार सच समझ भी लिया जाए फिर भी महावीर द्वारा कुक्कुटमाँस का सेवन तो कदापि युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता। इन सब दोषों को देखते हुए यह मानना अनुचित न होगा कि व्याख्याप्रज्ञप्ति का प्रस्तुत शतक प्रक्षिप्त, कृत्रिम एवं अप्रामाणिक है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

ठीक उसी समय अस्त्रशाला के अध्यक्ष ने आकर सानन्द वज्रायुध से कहा—अस्त्रागार में चक्र उत्पन्न हुआ है। तब वज्रायुध ने महा धूम-धाम से चक्र और अन्य तेरह रत्नों की पूजा की। चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए उन्होंने वैताढ्य पर्वत और छः खंड मंगलावती पर विजय प्राप्त की। कुमार सहस्रायुध को युवराज पद पर अभिषिक्त कर पृथ्वी के द्वितीय रक्षक के रूप में उन्हें नियुक्त किया।

एक दिन वज्रायुध जब सामानिक देवों सहित इन्द्र की तरह राजन्य, सामन्त, मन्त्री और सेनापति से परिवृत हुए स्व-राज्यसभा में बैठे थे उसी समय एक तरुण विद्याधर आकाश से उतरा और हस्ती द्वारा आहत वृक्ष की तरह काँपते-काँपते मैनाक जैसे समुद्र की शरण ग्रहण करता है उसी प्रकार विपन्नों के आश्रय-स्थल महाराज वज्रायुध के निकट गया। ठीक दूसरे ही क्षण एक सर्व-सुलक्षणा रूपवती विद्याधर कन्या मानो वह मूर्त्तिमती विद्या देवी हो हाथसे ढाल-तलवार लिए उपस्थित हुयी। वह चक्रवर्ती के समीप जाकर बोली, महाराज, इस दुर्वृत्त को अपनी शरण से मुक्त करें ताकि मैं इसे इसके दुष्कर्म का दण्ड दे सकूँ।

ठीक इसके बाद में यम के दूत-सा रक्तचक्षु एक क्रुद्ध विद्याधर हाथ में मुद्गर लिए प्रकट हुआ और वज्रायुध से बोला, उसके दुष्कृत्य का विवरण सुनिए जिसके लिए उसकी हत्या करने मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। इस जम्बूद्वीप में विदेह क्षेत्र के अलंकार स्वरूपसुकच्छ नामक एक विजय है। उस विजय में वैताढ्य पर्वत के अग्रभाग में नगर-श्रेणियों में चूड़ामणि और स्वर्ग-ऐश्वर्य के शुल्क रूप शुल्कपुर नामक एक नगर है। उस नगर में उभय कुल की कीर्ति की रक्षा करते हुए विद्याधर राज शुल्कदत्त और उनकी रानी यशोधरा रहती थी। मैं उनका पुत्र पवनवेग हूँ। नानाविध विद्या अर्जन कर अब मैं तरुण हुआ हूँ।

उसी वैताढ्य पर्वत की उत्तर श्रेणी की अलंकार रूप किन्नरगीत नामक नगर में दीप्तचूल नामक एक विद्याधर राज रहते हैं। उनकी पत्नी ने चन्द्र-कीर्ति सुकान्ता नामक एक सर्वसुलक्षणयुक्त कन्या को जन्म दिया। मैंने उसी से विवाह किया है। मेरे भी चारित्र और रूप सम्पन्न एक कन्या

हुयी। वही कन्या अभी आपके सम्मुख खड़ी है। यह मणिसागर पर्वत पर प्रज्ञप्तिका नामक विद्या की आराधना कर रही थी। ठीक उसी समय इस दुष्ट ने इसका अपहरण कर लिया। विद्या के प्रभाव से मेरी कन्या द्वारा प्रताड़ित होकर यह दुराचारी कहीं भी आश्रय न पाकर आपके आश्रय में आया है। प्रज्ञप्तिका विद्या की उपासना के लिए पूजा द्रव्य लेकर जब मैं वहाँ गया और उसे वहाँ नहीं पाया तब आभोगिनी विद्या के प्रयोग से समस्त तथ्य अवगत कर मैं यहाँ आया हूँ। हे दुराचारियों को दण्ड देने वाले, आप इस दुराचारी का परित्याग करें। इस मुद्गर के आघात से मैं उसे श्रीफल की भाँति दो खण्ड कर यम लोक भेज दूंगा।

अवधिज्ञान से सब कुछ जानकर राजा वज्रायुध उससे बोले, महात्मन्, धैर्य धरिए। इसके पूर्वजन्म की कथा मैं आपको सुनाता हूँ ध्यान से सुनिए :

इस जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र के विंध्यपुर नगर में विंध्यदत्त नामक एक राजा थे। उनके औरस से उनकी पत्नी सुलक्षणा के गर्भ से सर्वसुलक्षणयुक्त नलिनकेतु नामक पुत्र हुआ। उस नगर में बन्धुरूपी कमल के लिए सूर्यरूप श्रेष्ठि-कुल-तिलक धर्ममित्र नामक एक श्रेष्ठि निवास करते थे। उनकी पत्नी श्रीदत्ता के गर्भ से दत्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दत्त की पत्नी का नाम था प्रभंकरा। वह दिव्य रूप और लावण्यवती थी।

एकदिन बसंत ऋतु में रति और मदन की तरह वह पत्नी सहित उद्यान में क्रीड़ा करने गया। राजा का पुत्र नलिनकेतु भी उसी समय उद्यान में आया। प्रभंकरा के रूप और लावण्य को देखकर वह बेसुध-सा होकर सोचने लगा इसका सौन्दर्य जितना प्रशंसनीय है उतना ही प्रशंसनीय है वह जो उसके साथ क्रीड़ा करे। इस प्रकार मदन के वशीभूत होकर उसने प्रभंकरा का अपहरण कर लिया। तदुपरान्त नलिनकेतु उसके साथ यथेच्छ विहार करने लगा। उधर विरह वेदना में कातर बना दत्त प्रभंकरा को याद करते हुए उन्मादी की भाँति उस उद्यान में घूमता रहता। इसी भाँति घूमते हुए एक दिन उसने वहाँ सुमनस नामक एक मुनि को देखा। नेत्रों के लिए काजल जैसे अमृत है उसी प्रकार घाती कर्मों के क्षय हो जाने से सुमनस मुनि ने उसी समय अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाला केवलज्ञान प्राप्त किया। देव केवलज्ञान महोत्सव मनाने वहाँ आये। मुनि का देशनामृत पान कर दत्त अपना पूर्व दुःख भूल गया। उसने समस्त इन्द्रियों को संयमित कर दया धर्म का दीर्घकाल तक पालन किया। शुभ ध्यान में मृत्यु पाने के कारण

वह जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में सुकच्छ विजय में वैताढ्य पर्वत स्थित सुवर्ण-तिलक नगर में विद्याधर राज महेन्द्रविक्रम और रानी अनिलवेगा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। महेन्द्रविक्रम ने उसका नाम रखा अजितसेन। यथा समय महेन्द्रविक्रम ने समस्त विद्याएँ उसे प्रदान कीं। कारण वे विद्याएँ ही उनकी श्रेष्ठ सम्पदा थीं। बड़ा होकर अजितसेन ने विद्याधर कन्या से विवाह किया और उसके साथ आकाश में, पर्वतों पर, अरण्यों में नानाविध क्रीड़ाएँ करने लगा।

विंध्यदत्त की मृत्यु के पश्चात् विंध्यपुर में तार्क्ष्यकेतु-सा गौरवशाली नलिनकेतु राजा हुआ और प्रमादी देवों की तरह दत्त की अपहृता पत्नी प्रभंकरा के साथ विषयसुख भोग करने लगा। एक दिन देवी सहित वैमानिक देव जैसे विमान में आरोहण करते हैं उसी प्रकार प्रभंकरा सहित वह प्रासाद शिखर पर चढ़ा। सहसा उसने आकाश में शीलांजन धातु अपहरण-कारी दस्यु की तरह इतस्ततः विचरण करते दिक्हस्ती से पर्वताकृति मेघों को उदित होते देखा। बज्रपात के शब्द से दिक् समूह काँप रहा था। विद्युत् आलोक से आकाश आलोकित हो रहा था। और उसी मध्य एक इन्द्रधनुष उदित हुआ। उस दृश्य को देख कर वह आनन्दित हुआ। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने देखा प्रबल वायु वेग से वे मेघ नौका की भाँति इतस्ततः छिन्न-भिन्न हो गए, लगा मानो वह इन्द्रजाल देख रहा था। नलिनकेतु ने जब एक पल के अन्दर इस प्रकार मेघ को एकत्रित और छिन्न-भिन्न होते देखा तो संसार से विरक्त होकर वह सोचने लगा आकाश में जैसे मेघ एक मुहूर्त्त में उदित हुए और दूसरे मुहूर्त्त में ही छिन्न-भिन्न हो गए मनुष्य जीवन का सुख भी ऐसा ही है। एक ही जीवन में वह कभी युवक कभी वृद्ध, धनी-दरिद्र, प्रभु-भृत्य, स्वस्थ और रुग्न हो जाता है। हाय! इस संसार में सब कुछ क्षणिक है।

ऐसा चिन्तन कर उसने अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाया एवं स्वयं तीर्थंकर क्षेमंकर से प्रव्रजित हो गया। कठोर तपस्या और ध्यान से घाती कर्मों को क्षय कर उसने यथासमय केवलज्ञान प्राप्त किया। इसके अगले मुहूर्त्त में ही आयुष्यादि चार घाती कर्मों को भी क्षय कर सिद्ध लोक को गमन किया।

स्वभाव से ही सुशीला और स्वाधीनचेत्ता प्रभंकरा भी साध्वी सुव्रता के पास रहकर चन्द्रायण व्रत पालन करने लगी। उस तपस्या के फल से उसे

सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी। उसी प्रभंकरा ने आपकी कन्या शान्तिमती के रूप में जन्म लिया है। दत्त का जीव विद्याधर अजितसेन हुआ है और पूर्व जन्म के प्रेम के कारण उसने इसका अपहरण किया। अतः क्रुद्ध मत होइए। क्रोध भूल कर आप उसे एक भाई की तरह क्षमा कर दीजिए। दीर्घकालीन कषाय नरक ही ले जाता है, अन्य कहीं नहीं।

वज्रायुध की बात सुनकर वे तीनों ही वैर से मुक्त होकर मुक्ति के आग्रही बने।

चक्रवर्ती फिर बोले, तुम तीनों ही शीघ्र तीर्थंकर क्षेमंकर से दीक्षित होनेवाले हो। शान्तिमती रत्नावलि तप करेगी और मृत्यु के पश्चात् ईशान लोक में ईशानेन्द्र के रूप में जन्म ग्रहण करेगी। ठीक उसी समय पवनवेग और अजितसेन भी घाती कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। ईशानेन्द्र आकर उनका केवलज्ञान-महोत्सव बहुत धूम-धाम से सम्पन्न करेंगे। और स्व-शरीर (मृत देह) की पूजा करेंगे। कालक्रम से ईशानेन्द्र स्वर्ग से च्युत होकर मानव रूप में जन्म ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को जाएँगे।

वहाँ उपस्थित सभासदों ने जब चक्रवर्ती को त्रिकाल का विवरण देते सुना तो आश्चर्य से उनके नेत्र विस्फारित हो गए। राजा पवनवेग, उनकी कन्या शान्तिमती और विद्याधर अजितसेन चक्री को नमस्कार कर बोले, देव, आप हमारे पिता, गुरु, प्रभु और जगन्नाथ हैं। परस्पर हिंसा करने वाले मनुष्यों में आपके सिवाय हमारी रक्षा कौन करेगा? एक दूसरे की हत्या कर हम नरक जाते किन्तु आपके वचन हमें नरक-द्वार से लौटा लाए हैं। अतः हे प्रभु, संसार भय से भीत होकर हम अर्हत् क्षेमंकर के आश्रम में जा रहे हैं। आज्ञा दीजिए।

ऐसा कहकर उन्होंने चक्रवर्ती की आज्ञा ली और तीर्थंकर क्षेमंकर के निकट जाकर वे दीक्षित हो गए। इन शान्तमना ने सोचा उनका कृश शरीर उन्हें परित्याग कर जा सकता है इस भय से उन्होंने दीर्घकाल तक घोर तप किया। शान्तिमती मृत्यु के पश्चात् ईशानेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुयी और उसी मुहूर्त्त में उन दोनों को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। ईशानेन्द्र वहाँ आए, उनका केवल ज्ञान उत्सव कर स्व-देह का पूजन किया। ईशानेन्द्र भी वहाँ से च्यवकर मनुष्य बने और मुक्ति प्राप्त की। अन्य दोनों ने आयुष्य शेष होने पर उसी जीवन में मोक्ष प्राप्त किया।

सहस्राक्ष इन्द्र और जयंत स्वर्ग को जैसे संचालन करते हैं उसी प्रकार वज्रायुध और सहस्रायुध ने पृथ्वी पर शासन किया। एक दिन सहस्रायुध की पत्नी जयना रात्रि के समय स्वप्न में किरण विच्छुरणकारी एक स्वर्ण शक्ति देखी। दूसरे दिन सुबह जयना ने यह बात अपने पति से कही। वे बोले, देवी, तुम अवश्य ही एक महाशक्तिशाली पुत्र को जन्म दोगी। उसी समय जयना ने एक दुर्वह भ्रूण धारण किया और यथा समय पृथ्वी जैसे शष्य उत्पन्न करती है उसी प्रकार एक पुत्ररत्न को उत्पन्न किया। जयना ने जैसा स्वप्न देखा था उसी के अनुसार माता-पिता ने पुत्र का नाम रखा कनकशक्ति। शैशव अतिक्रम कर कनकशक्ति ने जब यौवन प्राप्त किया तब उसने सुमन्दिर नगरी के राजा मेरुमालीन और रानी मल्ला की रूप और लावण्यवती कन्या कनकमाला के साथ विधिवत् विवाह किया।

ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीमार नगरी में अजितसेन नामक एक राजा थे। रानी प्रियसेना के गर्भ से उनके एक पुत्री उत्पन्न हुयी। नाम रखा बसन्तसेना। बसन्तसेना कनकसेना की प्रिय सहेली थी। बसन्तसेना के पिता ने उसके उपयुक्त वर प्राप्त न होने से स्वयंबरा रूप में उसे कनकशक्ति के पास भेजा। कनकशक्ति ने विधिपूर्वक उससे विवाह किया। इससे बसन्तसेना के पितृस्वसा के पुत्र के मन को भयंकर आघात पहुँचा और वह क्रोधित हो उठा।

एक दिन कनकशक्ति जब उद्यान में इधर-उधर घूम रहा था तब उसने एक व्यक्ति को मुर्गे की तरह उड़ते और गिरते देखा। कनकशक्ति ने उससे पूछा—आप क्यों पक्षी की तरह उड़ते हैं और गिर जाते हैं? उस व्यक्ति ने जवाब दिया—यद्यपि यह गोपनीय है फिर भी आप जैसे महद् व्यक्ति को कहने में कोई आपत्ति नहीं है। फिर यह बताना भी मेरा कर्त्तव्य है। मैं विद्याधर हूँ। कार्यवश वैताढ्य पर्वत से इधर आया था। लौटते समय इस उद्यान के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर मैं यहाँ उतरा और इसके सौन्दर्य का उपभोग करने लगा। किन्तु पुनः जाने के समय जब मैंने आकाशगामिनी विद्या का स्मरण किया तो देखता हूँ, उसकी एक पंक्ति भूल गया हूँ। अतः डैनो में डोरा बँधे पक्षी की तरह मैं उड़ता हूँ और गिरता हूँ।

कनकशक्ति बोला, अन्य के सम्मुख विद्या उच्चारण करने में यदि कोई बाधा नहीं है तो आप मेरे सामने उच्चारण कीजिए।

विद्याधर ने जवाब दिया—साधारण आदमी के सामने विद्या उच्चारण निषिद्ध है। किन्तु आप जैसे महान व्यक्ति के सामने उच्चारण करना तो

क्या विद्या प्रदान करना भी कर्त्तव्य है। ऐसा कहकर उसने एक पंक्तिहीन विद्या का उनके सम्मुख उच्चारण किया। कनकशक्ति ने उस पंक्ति से सामंजस्य रख अन्य पंक्ति बोली। उस पंक्ति से विद्याधर को विद्या पुनः प्राप्त हो गयी और उसने कनकशक्ति को वह विद्या प्रदान की। विवेकशील उपकृत होने पर उपकार का प्रतिदान देते ही हैं। तदुपरान्त विद्याधर उन्हें नमस्कार कर चला गया और कनकशक्ति विद्या अधिगत कर विद्याधर हो गया। बसन्तसेना के पितृस्वसा का पुत्र को जो क्रोध आया था इसीलिए वह उसका कुछ कर नहीं सका। अपमानित होकर उसने आहार जल का परित्याग कर मृत्यु को प्राप्त किया और हिमचूल नामक देव रूप में उत्पन्न हुआ।

अपनी पत्नी बसन्तसेना और कनकमाला के साथ कनकशक्ति विद्या के प्रभाव से वायु की भाँति समस्त पृथ्वी पर अप्रतिहत रूप में विचरण करने लगा। एक दिन इसी भाँति स्वच्छन्द विचरण करता हुआ वह हिमवत पर्वत पर आया। वहाँ उसने चारण मुनि विपुलमती को देखकर उनके चरणों की वन्दना की। मूर्तिमन्त तपःप्रभाव सी उनकी देह स्वर्णवर्णी थी। अनुराग को क्षीण कर उन्होंने उस पर विजय पायी थी। धर्मलाभ कह कर उन्होंने देशना दी जो कि संसार रूपी दावानल को बुझाने में वर्षा के जल-सी थी। वह देशना सुनकर कनकशक्ति अपनी दोनों पत्नियों और राज्य को परित्याग कर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

विवेकशील और विवेकमना रानियाँ भी मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से आचार्य विमलमति से दीक्षित हो गयी। इधर-उधर विचरण करते हुए कनकशक्ति एक दिन सिद्धिपद पर्वत पर पहुँचे और एक रात्रि की दृढ़ प्रतिमा धारण की। क्रूरमना हिमचूल ने जब उनको स्तम्भ की भाँति निश्चल खड़े देखा तो उनपर आक्रमण किया। उसे आक्रमण करते देखकर क्रुद्ध हुए विद्याधरों ने हिमचूल को भय दिखाकर प्रताड़ित कर दिया। मनुष्य अच्छे का ही पक्ष लेता है। प्रतिमा शेषकर मानों पूंजीभूत तप ही हो ऐसे कनकशक्ति वहाँ से रत्नसंचय नगर गए। वहाँ सुरनिपात उद्यान में पर्वत की भाँति स्थिर होकर पुनः एक रात्रि की प्रतिमा धारण की। उसी अवस्था में क्षपक श्रेणी में आरोहण कर घाती कर्मों को क्षय कर उन्होंने सर्व प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया। देवों ने आकार उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाया। यह देखकर भयभीत बने हिमचूल ने कनकशक्ति की शरण ग्रहण की। वज्रायुध भी उनका केवल ज्ञान महोत्सव मनाकर नगर लौट गया।

एक दिन भगवान क्षेमंकर कोटि-कोटि देव, असुर और मनुष्यों से परिवृत्त होकर समवसरण के लिए वहाँ उपस्थित हुए। अनुचरों ने चक्रवर्ती वज्रायुध को आकर निवेदित किया—देव, तीर्थंकर भगवान क्षेमंकर समवसरण के लिए यहाँ आकर अवस्थित हैं। यह सुनकर संवाद-वाहक को साढ़े बारह करोड़ सुवर्णदान कर अनुचरों सहित क्षेमंकर के समवसरण में उपस्थित हुए। उन्हें तीन बार प्रदक्षिणा देकर विधिवत् वन्दना कर वे शक्र के पीछे जाकर बैठ गए और उनकी देशना सुनी।

देशना के अन्त में चक्री बज्रायुध ने उन्हें वन्दना कर कहा, भगवन्, दुस्तर संसार सागर के भय से मैं भीत हो गया हूँ। सहस्रायुध को सिंहासन पर बैठाकर जब तक मैं दीक्षा लेने यहाँ नहीं आऊँ आप यहीं अवस्थान करें। शुभ कर्म में विलम्ब मत करो इस कथन से उद्‌बुद्ध बने वज्रायुध नगर लौटे और सहस्रायुध को सिंहासन पर बैठाया। सहस्रायुध ने उनका प्रव्रज्या महोत्सव मनाया। तत्पश्चात् वे शिविका में बैठकर क्षेमंकर केवली के निकट पहुँचे। चार हजार रानियाँ, मुकुटबद्ध राजाओं एवं सात सौ पुत्रों सहित उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। नाना प्रकार के अभिग्रह ग्रहण कर परिषहों को सहन कर प्रव्रजन करते हुए राजर्षि वज्रायुध सिद्धि पर्वत पर गए। मैं सब प्रकार के परिषहों को सहन करूँगा कहकर वे महामना विरोचन शिखर शीर्ष पर एक वर्ष के लिए प्रतिमा धारण कर अवस्थित हो गए।

अश्वग्रीव के पुत्र मणिकुम्भ और मीनकेतु दीर्घकाल तक भव भ्रमण कर अज्ञान तप करते हुए असुर रूप में जन्म ग्रहण किया। स्वेच्छा से भ्रमण करते हुए वे महामुनि जहाँ प्रतिमा में स्थित थे वहाँ आए। अमिततेज पूर्व जन्म के वैर के कारण भैंसा जैसे वृक्ष पर आक्रमण करता है उसी भाँति उस महामुनि पर आक्रमण किया। सिंह बनकर छूरे-से तीक्ष्ण नाखूनों से उनकी देह को दोनों ओर चीर डाला। हस्ती बनकर सूँड़ से अन्तर वेदी की तरह उनपर आक्रमण किया, दाँतों से उनकी देह को क्षत-विक्षत कर डाला। असह्य पदाघात से उनको पीस डाला फिर सर्प बनकर शकट की धुरा की तरह उनकी देह को आवेष्टित कर दोनों ओर लटके रहे। राक्षस बनकर छूरी-से तीक्ष्ण दाँतों से उनकी देह को काट-काट डाला। जब वह महामुनि को इस प्रकार पीड़ित कर रहा था उसी समय वैमानिक देवों की पत्नियाँ महामुनि की उपासना के लिए स्वर्ग से उतरी। रम्भा आदि देवियां दूर से ही इस प्रकार मुनि को पीड़ित होते देखकर बोल उठीं, अरे ओ दुष्ट, तू यह क्या कर

रहा है ? फिर वे शीघ्रतापूर्वक आकाश से उतरी। उन्हें उतरते देख वे भीत एवं त्रस्त होकर भाग छुटे। सूर्यालोक में उल्लू आखिर कब तक रह सकता है ? रम्भा आदि देवियां इन्द्र-से महामुनि के सम्मुख अभिनय द्वारा अपनी भक्ति निवेदित करने लगी। भक्ति निवेदन से स्वयं को कृतकृत्य समझकर वे अपने-अपने निवास को लौट गयी। एक वर्ष की प्रतिमा समाप्त कर अनन्य संयम और व्रतयुक्त महामुनि पृथ्वी पर सर्वत्र विचरण करने लगे।

सहस्रायुध मुकुटबद्ध राजाओं से सेवित होकर परिणिता पत्नी की तरह राज्यश्री का भोग करने लगे।

एक दिन नानाविध मुनियों से घिरे गणधर पिहितास्रव उस नगर में आए। भक्ति के कारण सहस्रायुध उन्हें वंदन करने गए और कानों के अमृत तुल्य उनके प्रवचन सुना। यह संसार इन्द्रजाल-सा अनुभूत होने से अपने पुत्र शतवली को सिंहासन पर बैठाकर पिहितास्रव मुनि से दीक्षित हो गए और अन्तर एवं बाह्य तप में निरत होकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे।

विचरण करते हुए एकदिन बुध जैसे चन्द्र से मिलता है उसी प्रकार सहस्रायुध वज्रायुध से मिले। पिता और पुत्र तप और ध्यान साधना में निरत हुए। एक साथ उपसर्गों को सहन कर देहबोध को भूले हुए तितिक्षा सम्पन्न बने ग्राम नगर अरण्यादि में विचरण करते हुए दीर्घ दिन को वे एक दिन की तरह व्यतीत करने लगे। अन्त में उन्होंने इषद्प्राग्भार पर्वत पर आरोहण कर पादोपगमन अनशन व्रत ग्रहण कर लिया। आयुष्य पूर्ण होने पर वे तृतीय ग्रैवेयक में महाऋद्धि सम्पन्न अहमिन्द्र रूप में १५ सागरोपम की आयु प्राप्त कर उत्पन्न हुए।

तृतीय सर्ग समाप्त

[क्रमशः

संकलन

॥ तप तो कर्म निर्जरा एवं आत्मशुद्धि के लिए है ॥

संवत्सरी तक त्याग-तपस्याओं की झड़ी लगी रहती है जो गौरव की बात है। उपवास से लेकर लम्बी-लम्बी तपस्याएँ होती हैं किन्तु तपस्याओं के साथ जो रूढ़ियाँ जुड़ गई हैं उन्हें प्रश्रय नहीं देना चाहिए। रुपयों का लेन-देन, बर्तनों को प्रभावना के रूप में बांटना, जीमनवार करना आदि तपस्याओं के महत्व को बढ़ाते नहीं, बल्कि कम करते हैं। वस्तुतः तप तो कर्म निर्जरा एवं आत्मशुद्धि के लिए किया जाता है, किसी को दिखाने, प्रदर्शन करने या लेन-देन के लिए नहीं किया जाता।

चातुर्मास कषायों को कम करने, आत्मा को निर्मल बनाने के लिए उपयुक्त अवसर है किन्तु कई जगह देखा गया है कि चौमासे के दौरान समाज में फूट, कलह और द्वेष बढ़ता है। एक से अधिक चौमासे यदि किसी एक शहर में विभिन्न सम्प्रदायों के साधु-साध्वियों के हैं तो वहाँ आपसी प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या और फूट का कारण भी बन जाते हैं। समाज टुकड़ों में बँट जाता है। चातुर्मास समाप्त होने के बाद संत-सतियां अन्यत्र विहार कर जाते हैं और गांव, शहर में फूट की गहरी खाई हो जाती है। अतः इस दृष्टि से बहुत ही जागरुक रहकर समाज में स्वस्थ वातावरण बनाये रखना जरूरी है।

—चंदनमल चाँद

जैन जगत ॥ जून १९९०

॥ ५० करोड़ की लागत से मीट टेक्नोलॉजी ॥

भारत सरकार अतिशीघ्र ५० करोड़ की लागत से 'मीट टेक्नोलॉजी मिशन' की व्यवस्था कर मांस के उत्पादन को बढ़ाने की योजना बना रही है। इस व्यवस्था को सफल बनाने के लिए मूक प्राणियों को पैनी मशीनों के नीचे अपनी आहुति देनी जरूरी है। यदि निरपराध प्राणियों की हिंसा न हो तो समस्या प्रश्न-चिन्ह बन जाती है? व्यवहार-तुला पर विरोधाभास प्रकट करने वाला यह नियम देश के प्रबुद्ध व अगुआ लोगों के सोच को सही समाधान देता है। ५० करोड़ की लागत से की जाने वाली मीट टेक्नोलॉजी व्यवस्था के स्थान पर भारत सरकार अन्न उत्पादन को बढ़ाकर भी इस समस्या का स्थायी समाधान दे सकती है। मीट टेक्नोलॉजी की व्यवस्था के तल में कई

खामियाँ नजर आती हैं। भारी संख्या में प्राणियों का संहार, प्राकृतिक असंतुलन, फिर नई समस्या को उभारने वाले तत्व हैं।

इंगलैंड के आधुनिक वैज्ञानिक हेगे के अनुसार जब निरपराध प्राणियों की हत्या की जाती है तो उनके मन में प्रतिशोध, द्वेष व घृणा की भावना तीव्र हो जाती है। शरीर के रसायन बदल जाते हैं। स्वस्थ प्राणी के द्वारा ऐसे मांस का सेवन करने पर अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी विषाक्त मांस को खाने से तत्काल मृत्यु भी हो जाती है। नाड़ी तंत्र व ग्रंथि तंत्र का संतुलन बिगड़ जाता है। शरीर में यूरिक एसिड जमा हो जाता है। फलस्वरूप लकवा, दमा, गठिया व हिस्टीरिया जैसे गंभीर रोग हो जाते हैं।

—साध्वी शुभ्रयशा

जैन भारती, जून १९९०

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

अमर भारती ।। जून १९९०

उपाध्याय श्री अमरमुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'श्रमण भगवान महावीर द्वारा गोशालक की भर्त्सना' (उपाध्याय श्री अमरमुनि), 'औदार्य की जीवंत प्रतिमूर्ति आर्य चन्दना' (उपाध्याय श्री अमरमुनि), 'कर्मयोग और उसका आदर्श' (श्री विजयमुनि शास्त्री), 'अहिंसा की सार्थकता' (सौभाग्यमल जैन)।

कथालोक ।। जून १९९०

इस अंक में है जैन कथा 'शील सुन्दरी' (मुनि मोहनलाल 'शार्दूल'), 'विभ्रम विमुक्त चुल्लशतक' (मुनि विनयकुमार 'आलोक'), 'सर्वमान्य विश्रुत आचार्य मानतुंग सूरि' (सोहन राज कोठारी)।

जैन जर्नल ।। अप्रैल १९९०

इस अंक में है 'Distinction Between Living and Non-Living' (J. L. Jain), 'True Happiness' (Brahmachari Shital Prasad), 'The Doctrine of Ahimsa' (Ajit Prasad), 'Ahimsa as the Key to World Peace' (Champat Rai Jain), 'Jainism' (Virchand R. Gandhi), 'The Jain Tradition of the Origin of Pataliputra' (Puran Chand Nahar).

तीर्थंकर ।। मई १९९०

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'शाकाहार का प्रचार : खाद्य सामग्री के माध्यम से' (सुरेन्द्र बोथरा), 'मैं पशुओं में हूँ, पशु जैसा ही हूँ, पर पशु नहीं हूँ' (कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'), 'ईसा मसीह और जैन धर्म' (एम० एल० जैन), 'कर्त्ता और कर्म' (कन्हैयालाल सरावगी)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

CIRCULAR ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 38-5960

Branch Office :

Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 5378
5578, 5778

WB/NC-253
Vol. XIV No. 3 TITTHAYARA July 1990
Registered with the Registrar of Newspape s for India
under No. R. N. 24582/73